UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178817

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP- 43 30-1-71 -5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H. 81.09 Accession No H.924

Author I 42B

Title इन्दुरकर, गंगाधर। बिहारी दर्शन। 1948

This book should be returned on or before the date last marked below

"बिहारी-दर्शन"

सकलन कर्ता,
श्री० गंगाधर-इन्दूरकर
"साहित्य रत्न"—शास्त्री।

प्रकाशक

तरुण-भारत-ग्रन्थावली,

दारागंज प्रयाग.

प्रथम बार १०००]   सितम्बर १९४८   [मूल्य, १)

निवेदन

बहुत दिन से हमारी यह इच्छा थी कि महाकवि बिहारी के ऊपर कोई ऐसी पुस्तक निकालो जाय जो कि बहुत ही संक्षिप्त व नये विद्यार्थियों के लिये विशेष तौर पर उपयोगी हो।

संयोग से श्री गंगाधर जी इन्दूरकर से हमने प्रार्थना की और उन्होंने कष्ट करके पुस्तक संकलित कर दी। पुस्तक कैसी है। यह सुविज्ञ पाठकों पर ही हम छोड़ते हैं।

पुस्तक बहुत ही शीघ्रता में छपी है। अतएव त्रुटियों के लिये क्षमा चाहते हैं। और अगले संस्करण में हम इसको और संशोधित व सुन्दर रूप में प्रकाशित करेंगे।

प्रकाशक

संगम प्रेस, कॉटगंज, प्रयाग।

बिहारी दर्शन

——०::०:——

१

मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परे स्याम हरित-दुति होय॥

२

सीस-मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उरमाल।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल॥

३

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज केलि-निकुंज मग, पग पग होत प्रयाग॥

४

मोहन-मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होइ॥

५

मोर-मुकुट कि चन्द्रिकनु यौं राजत नँद नंद।
मनु ससि सेखर की अकस, किय सेखर सत चन्द॥

६

सखि सोहति गोपाल कैं, उर गुञ्जन की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए, दावनल की ज्वाल॥

७

सोहत ओढ़ैं पीत पट, स्याम सलौने गात।
मनौ नीलमणि सैल पर, आतपु पर्‌यौ प्रभात॥

८

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष रँग होति॥

९

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ, स्यामु सुभग सिर मौरु।
बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु, दृगनु अजौं वह ठौरु॥

१०

मिलि परछाँही जोन्ह सौं, रहे दुहनु के गात।
हरि राधा इक संग हीं, चले गली महिं जात॥

११

वन तन कौ निकसत लसत, हँसत हँसत इत आइ।
दृग खंजन गहि लै चल्यौ, चितवनि चैंपु लगाइ॥

१२

चित-बितु बचतु न हरत हठि, लालन दृग बरजोर।
सावधान के बटपरा, ए जागत के चोर॥

१३

सुरति न ताल न तान की, उठ्यौ न सुरु ठहराइ।
एरी राग बिगारि गौ, बैरी बोल सुनाइ॥

१४

अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ारे हू रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह॥

१५

अंग अंग प्रतिबिंब परि दरपन में सब गात।
दुहरे, तिहरे, चौहरे, भूषन जाने जात॥

१६

कञ्चन तन धन बरन बर रह्यौ रंगु मिलि रंग।
जानी जात सुबास हीं, केसरि लाई रंग॥

१७

केसरि कै सरि क्यों सकै, चंपकु कितकु अनूपु।
गातरूप लखि जाति दुरि जात रूप कौ रूपु॥

१८

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाय।
सौंधे कैं डोरैं लगी, अली चली संग जाय॥

१६

तूँ रहि हौं हीं सखि लखौ चढ़ि न अटा बलि बाल।
सबहिनु बिनु ही ससि उदै दीजतु अरघु अकाल॥

२०

रही लटू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप।
कितौ मिठास दयौ दई इतैं सलोनैं रूप॥

२१

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ।
सगुन सलोने रूप की जनु चखतृषा बुझाइ॥

२२

मानहु विधि तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिवैं काज।
दृग पग पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज॥

२३

पहिरि न भूषन कनक के, कहि आवत इहिं हेत।
दरपन के से मोरचे देह दिखाई देत॥

२४

सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छवि होति।
जल चादर के दीप लौं जगमगाति तन जोति॥

२५

सोरठा—मंजुल बिंदु सुरंगु, मुखु ससि केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन जगत॥

२६

कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु॥

२७

नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ।
छबिहिं बढ़ावतु रवि मनौ ससि मंडल में आइ॥

२८

कहत सबै बेंदी दियैं आँकु दसगुनौ होतु।
तिय लिलार बेंदी दियै अगिनितु बढ़तु उदोतु॥

२९

जहां जहां ठाढ़ौ लख्यौ, स्याम सुभग सिर मौर।
उनहूँ बिन छनि गहि रहत दृगनि अजहुँ वह ठौर॥

३०

चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानु जा, वे हलधर के बीर॥

३१

नित प्रति एकत ही रहत, वैस बरन मन एक।
चहियत जुगुल किसोर लखि, लोचन जुगल अनेक॥

३२

नाचि अचानक ही उठे, बिन पावस वन मोर।
जानति हौं नन्दित करी, यह दिसि नन्द किसोर॥

३३

प्रलय करन बरसन लगे, जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गर्व हर्‌यौ हरषि, गिरिधर गिरिधर हाथ॥

३४

लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल॥

३५

मकरा कृति गोपाल के, कुंडल सोहत कान।
धस्यो समर हिय गढ़ मनो, ड्योढ़ी लसत निसान॥

३६

लिखन बैठि जाकि सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

३७

भूषन भारु सँभारि है क्यौं इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं सोभा ही कैं भार॥

३८

न जक धरत हरि हिय धरैं नाजुक कमला बाल।
भजत भार भय भीत ह्वै घनु चन्दनु वनमाल॥

३९

अरुन बरन तरुनी चरन अंगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरंग रंगु सी मनौ चपि बिछियनु कैं भार॥

४०

छाले परिबे कैं डरनु सकै न हाथ छुवाइ।
झझकत हियै गुलाब कैं झँवा झँवैयत पाइ॥

४१

सोहत अँगुठा पाइ कै अनवट जरयौ जराइ।
जीत्यौ तरिवन दुति सु ढरि परयौ तरनि मनु पाइ॥

४२

अजौं तरचौना हीं रह्यौ श्रुति सेवत इक रंग।
नाक बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं सङ्ग॥

४३

बिरह जरी लखि जीगननु कह्यौ न डहि कै बार॥
अरी आउ भजि भीतरी बरसत आजु अँगार॥

४४

आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की रानि।
साहस ककै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति॥

४५

सुनत पथिक मुँह माह निसि लुवै उहिं गाम।
बिनु बूझै बिनुही कहैं जियति बिचारी बाम॥

४६

औधाई सीसी सुलखि बिरह बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ छीटौ छुई न जात॥

४७

कहा कहौं वाकी दसा हरि प्राननु के ईस ।
बिरह ज्वाल जरिबो लखै मरिबौ भई असीस ॥

४८

नित संसौ हंसौ बचतु मनौ सु इहि अनुमानु ।
बिरह-अगिनि लपटनु सकतु झपटि न मीचु सचानु ॥

४९

बिरह सुखाई देह नेहु कियौ अति डह डहौ ।
जैसे बरसैं मेह जरें जवासौ जौ जमै ॥

५०

उत तें इत इत तें उतहिं छिनक न कहु ठहराति ।
जक न परति चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति ॥

५१

इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्योई नाँहि ।
देखै बनै न देखतै अन देखैं अंकुलाइ ॥

५२

दुचितैं चित हलति न चलति हँसति न झुकति बिचारि ।
लखत चित्र पिउ लखि चितै रही चित्र लौ नारि ॥

५३

कहत सबै कबि कमल से मो मत नैन पखानु ।
नतरु ककत इन बिय लगत उपजतु बिरह कृसानु ॥

५४

तच्यौ आँच अब बिरह को रह्यौ प्रेम रस भीजि ।
नैननु कै मग जलु बहै हियौ पसीजि पसीजि ॥

५५

स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा तीरु ।
अँसुवनु करति तरौंस कौ खिनकु खरौं ह्वौं नीरु ॥

५६

लाल तुम्हारे बिरह की अगनि अनूप अपार ।
सरसै बरसैं नीर ह्वै झर ह्वै मिटै न झार ॥

५७

क्यों बसियै क्यौं निबहियै नीति नेहपुर नाँहि ।
लगा लगी लोइन करैं नाहक मन बँधि जाँहि ॥

५८

हरि छवि जल जब लैं परे, तब तैं छिन बिछुरैं न ।
भरत, ढरत, बूड़त, तरत रहत घरी लौं नैन ॥

५९

लई सौंह सी सुनन की तजि मुरली धुनि आन ।
किए रहति नित राति दिनु कानन लागे कान ॥

६०

ह्याँ तैं ह्याँ ह्याँ तैं इहाँ नेकौ धरति न धीर ।
निसि दिन डाढ़ी सी फिरति बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥

६१

पिय कैं ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि ।
आपु आपु हीं आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥

६२

गुड़ी उड़ी लखि लाल की अँगना अँगना माँह ।
बौरी लौ दौरी फिरति छुवत छबीली छाँह ॥

६३

छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहर गेह ।
सटपटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह ॥

६४

रहे बरोठे मैं मिलत पिउ प्राननु के ईसु ।
आवत आवत की भई विधि की घरी घरी सु ॥

६५

जद्यपि सुन्दर सुघर पुनि सगुनौ दीपक नेह ।
तऊ प्रकासु करै तितौ भरियै जितै सनेह ॥

६६

लाल सलोने अरु रहे अति सनेह सों पागि ।
तनक कचाई देत दुख सूरन लौं मुह लागि ॥

६७

सकत न तुंव ताते वचन मोरस कौ रसु खोइ ।
खिन खिन औटे खीर लौं खरौ सवादिलु होइ ॥

६८

करनु जातु जेती कटनि बढ़ि रस-सरिता सोतु।
आल बाल उर प्रेम तरु तितौ तितौ दृढ़ होतु॥

६९

सरस सुमिल चित तुरँग की करि करि अमित उठान।
गोइ निबाहैं जीतियै खेलि प्रेम चौगान॥

७०

गिरि तैं ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजारु।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम पयोधि पगारु॥

७१

देखत बुरै कपूर ज्यौं उपै जाइ जिन लाल।
छिन छिन जात परी खरी छीन छबीली बाल॥

७२

नैंक व जानी परति यौं परयौ बिरह तनु छामु।
उठति दियैं लौं नाँदि हरि लियैं तिहारौ नामु॥

७३

करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाड़तु नीचु।
दीनैं हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु॥

७४

मरिबे कौ साहसु ककै बढ़ै बिरह की पीर।
दौरनि ह्वै समुही ससी सरसिज सुरभि समीर॥

७५

हौं ही बौरी बिरह बस कै बौरौ सबु गाउँ ।
कहा जानिए कहत हैं, ससिहिं सीतकर नाउँ ॥

७६

भौ यह ऐसोई समौ जहाँ सुखद दुख देत ।
चैत चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत ॥

७७

विकसित नव मल्ली कुसुम निकसित परिमल पाइ ।
परसि पजारति बिरहि हिय बरसि रहे की वाइ ॥

७८

याकैं उर औरे कछू लगी बिरह की लाइ ।
पजरै नीर गुलाब कैं पिय की बात बुझाइ ॥

७९

हितु करि तुम पठयौ लगैं वा बिजना की वाइ ।
टली तपति तन की तऊ चली पसीना न्हाइ ॥

८०

कहे जु बचन बियोगिनी बिरह बिकल बिललाइ ।
किए न को अँसुवा सहित सुवाति बोल सुनाइ ॥

८१

मरी डरी कि टरी बिथा कहा खरी चलि चाहि ।
रही कराहि कराहि अति अब मुँह आहि न आहि ॥

८२

बिरह बिपति दिनु परत हीं तजे सुखनु सब अंग ।
रहि अबलौं डब दुखौ भए चलाचलैं जिय संग ॥

८३

मरनु भलौ बरु बिरह तैं यह निहचय करि जोइ ।
मरन मिटै दुखु एक कौ बिरह दुहूँ दुख होइ ॥

८४

कौड़ा आंसू बूँद कसि सांकर बरुनी सजल ।
कीने बदन निमूंद दृग मलिंग डोर रहत ॥

८५

मिलि चलि चलि मिलि मिलि चलत आंगन अथयौ भानु ।
भयो मुहूरत मोर कौ पौरिहि प्रथमु मिलानु ॥

८६

कहा भयौ जौ बीछुरे मो मन तो मन साथ ।
उड़ी जाउ कितहूँ तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ ॥

८७

जब जब वै सुधि कीजियै तब तब सब सुधि जाहिं ।
आँखिन आँखि लगी रहै आखैं लागति नांहि ॥

८८

कागद पर लिखत न बनत कहत संदेसु लजात ।
कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात ॥

८६

तर झुरसी ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाइ।
पिय पाती बिन ही लिखी बाँची बिरह बलाइ॥

६०

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर उर लगाइ भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति बाँचति धरति समेटि॥

६१

वाम बाँह फरकति मिलै जौ हरि जीवन मूरि।
तौ तोहीं सौं भेटिहौं राखि दाहिनी दूरि॥

६२

ललन चलनु सुनि चुप रही बोलि आपु न ईठि।
राख्यौ गहि गाढ़ै गरैं मनौ गलगली डीठि॥

६३

ललन चलनु सुनि पलनु मैं अँसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिन हूँ सूठे हीं जमुहाइ॥

६४

चलत चलत लौं लै चलैं सब सुख संग लगाइ।
ग्रीषम वासर निसिर निसि प्यौ मो पास बसाइ॥

६५

पूस मास सुनि सखिनु पैं साईं चलत सबारु।
गहि कर, बीन प्रवीन तिय राग्यौ राम मलारु॥

९६

रहि हैं चंचल प्रान ए कहि कौन की अगोट।
ललन चलन की चित धरी कल न पलन की ओट॥

९७

अजौं न आए सहज रंग बिरह दूबरे गात।
अबही कहा चलाइयति ललन चलन की बात॥

९८

चाह भरी अति रस भरी बिरह भरी सब बात।
कोरि संदेसे दुहुनु के चले पौरि लौं जात॥

९९

कोटि जतन कीजै तऊ नागरि नेह दुरै न।
कहै हेत चितु चीकनो नई रुखाई नैन॥

१००

लखि गुरुजन बिच कमल सौ सीसु छुवायौ स्याम।
हरि सनमुख करि आरसी हियै लगाई बाम॥

१०१

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करैं भौंहनु हँसै देन कहैं नटि जाय॥

१०२

नाक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौ कंकरीली गैल॥

१०३

मोहि दयौ मेरौ भयौ रहतु जु मिलि साथ।
सो मनु बाँधि न सौंपियै पिय सौतिनि के हाथ॥

१०४

मारयौ मनु हारिनु भरी गारय खरी मिठाहि।
वाकौ अति अनखा हटौ मुसकाहट बिनु नाहि॥

१०५

राति द्यौस हौंसै रहै मानु न ठिकु ठहराइ।
जेतौ औगुनु दूंढ़ियै गुनै हाथ परि जाय॥

१०६

ध्यान आनि ढिग प्राणपति रहति मुदित दिन राति।
पलकु कंपति पुलकति पलकु पलकु पसीजति जाति॥

१०७

सकै सताइ न तमु विरहु निसिदिन सरस सनेह।
रहै बहै लागी दृगनु दीप सिखा सी देह॥

१०८

नैंक न सुरसी बिरह झर नेह लता कुम्हिलाति।
नित नित होति हरी हरी खरी झालरति जाति॥

१०९

छतौ नेहु कांगर हियैं भई लखाइ व टाँकु।
बिरह तपैं उघरयौ सु अब सेंहुड़ कैसो आँकु॥

११०

सोवत जागत सुपन बस रस रिस चैन कुचैन।
सुरति श्यामघन की सु रति बिसरैं हूँ बिसरै न॥

१११

जाति मरी बिछुरी घरी जल सफरी की रीति।
खिन खिन होति खरी खरी अरी जरी यह प्रीति॥

११२

रह्यौ रोंचि अंतु न लहै अवधि दुसासन बीरु।
आली बाढ़तु बिरह ज्यौं पंचाली कौ चीरु॥

११३

देखौं जागत वैसियै सांकर लगी कपाट।
कित ह्वै आवतु जातु भजि को जानै किहिं बाट॥

११४

कर मुन्दरी की आरसी प्रतिबिंबित प्यौ पाइ।
पीठि दियै निधरक लखै इक टक डीठि लगाइ॥

११५

ठाढ़ी मंदिर पै लखै मोहन दुति सुकुमारि।
तन थाकै हूँ ना थकै चख चित चतुर निहारि॥

११६

लाल तुम्हारे रूप की कहौ रीति यह कौन।
जासौं लागत पलकु दृग लागत पलक पलौ न॥

११७

लोभ लगे हरि रूप कै करी सांटि जुरि जाइ।
हौं इन बेची बीच हीं लोइन बड़ी बलाइ॥

११८

डर न टरै नींद न परै हरै न काल बिपाकु।
छिनकु छाकि उछकै न फिरि खरौ विषमु छवि छाकु॥

११९

मैं हो जान्यौ लोइननु जुरत बाढ़ि है जोति।
कौ हो जानतु दीठि कौं दीठि किरकिरी होति॥

१२०

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रंग त्यों त्यों उज्जलु होइ॥

१२१

जो न जुगुति पिय मिलन की धूरि मुकुति मुंह दीन।
जो लहियै संग सज्जन तो धरक नरक हूँ कीन॥

१२२

छला छबीले लाल कौ, नवल नेह लहि नारि।
चूँबति चाहति लाइ उर पहिरति धरति उतारि।

१२३

ए काँटे मो पाँय गड़ि लीन्ही मरन जिवाय।
प्रीति जनावति नीति सों मीत जु काढ्यो आय॥

१२४

हँसि उतारि हिय तैं दई तुम जु तिहिं दिना लाल।
राखति प्राण कपूर ज्यौं बहै चुहुटिनी माल॥

१२५

मैं यह तोही मैं लखी भगति अपूरब बाल।
लहि प्रसाद माला जु भौ तनु कदंब की माल॥

१२६

फिरि फिरि बूझति कहि कहा कह्यौ साँवरे गान।
कहा करत देखे कहाँ अली चली क्यों बात॥

१२७

बिरह-बिथा जल परस बिन बसियतु मो मन ताल।
कछु जानत जल थंभ विधि दुर्योधन लौं लाल॥

१२८

बाल बेलि सूखी सुखद इहि रूखी रुख घाम।
फेरि डह डही कीजिये सुरस सींचि घनश्याम॥

१२९

मान करत वरजति न हौं उलटि दिवावति मौंह।
करी रिसौंहीं जाहिगी सहज हँसौं ही भौंह॥

१३०

हा हा बदनु उघारि दृग सफल करैं सब कोइ॥
रोज सरोजनु कैं परै हँसी ससी की होइ॥

१३१

वाही दिन तै न मिटयौ मानु कलह कौ मूलु।
भलैं पधारे पाहुने ह्वै गुड़हर कौ फूलु॥

१३२

पति रितु औगुन गुन बढ़त मानु माह कौ सीतु।
जाति कठिन ह्वै अति मृदौ रवनी मनु नव नीतु॥

१३३

छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध।
ठौर ठौर झौंरत झँपत झौंर झौंर मधु अंध॥

बिहारी दर्शन

—:※::※:—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महाकवि बिहारी लाल के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है 'ये माथुर चौबे कहे जाते हैं और इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुवा गोविंदपुर गाँव में संवत् १६६० के लगभग माना जाता है। एक दोहे के अनुसार इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखंड में बीती और तरुणावस्था में ये अपनी ससुराल मथुरा में आ रहे। अनुमानतः ये संवत् १७२० तक वर्तमान रहे। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयसाह (महाराज जयसिंह) के दरबार में रहा करते थे। इनका अधिकांश जीवनवृत्तांत निम्नलिखित दोहों और पदों पर ही अवलम्बित है।

"जन्म लियो द्विजराजकुल, प्रकट भये ब्रज आय।
मेरे हरो कलेश सब, केशव केशवराय॥"

"जन्म ग्वालियर जानिये, खंड बुन्देले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥

माथुर विप्र ककोर कुल बसत मधुपुरी गांव।"

बिहारी लाल के सम्बन्ध में इतिहासकारों में अत्यधिक मतभेद है। भिन्न भिन्न स्थानों में इन्हें ब्रह्मभट्ट, माथुर ब्राह्मण, सनाढ्य मिश्र कान्यकुब्ज और राय कहा गया है। कुछ लोग इन्हें महाकवि केशवदास का पुत्र बतलाते हैं और कुछ लोग कृष्ण कवि का इनका पुत्र कहते हैं।

अक्टूबर सन् १९२६ का सरस्वती में 'बिहारी विहार' नामक ५० दोहों का एक संकलन प्रकाशित हुआ है। यदि इन दोहों के रचयिता को हम बिहारी लाल मान लें तो बिहारी के जीवन वृत्तांत पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है। किन्तु दोहों की भाषा देखकर उन्हें महाकवि बिहारीलाल कृत कहने में संकोच प्रतीत होता है। जो कुछ भी हो उक्त विहार से निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं।

पितामह—वसुदेव जू, पिता—केशव देव, गांव—मधुपुरी,
जाति—ब्राह्मण, चौबे, माथुर (छः घरा) ककोर इनके पुत्र कृष्णा
जन्म—संवत् जुगशर रससहित भूमि रीति गिन लीन्ह।
कातिक सुदि बुध अष्टमी जन्म हमहिं विधि दीन्ह।
(संवत् १६५४)

शिक्षा:—वृन्दाबन में नागरीदास के यहां जाकर
"विद्याकाव्य अनेक विधि पढ़ी परम सचुपाय
और गान ताल सब सीखियो जपत रहें हरि नाम"
"निज भाषा अरु संस्कृति, पढ़ि लीन्ही बहुभांति"

इसी बिहारी विहार के अनुसार महाराजा जयसिंह एक बार वृन्दावन गये और वहां बिहारीलाल की कविताओं से अत्यधिक प्रसन्न होकर उन्होंने इन्हें अर्गलपुर (आगरा) बुलाया। आगरे के किले में ये बहुत दिनों तक रहे। वहां इन्होंने फारसी आदि पढ़ी। जयसिंह की आज्ञा से इन्होंने बिहारी सतसई की रचना की। इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक एक मुहर मिलती थी। इनकी मृत्यु वृन्दावन में हुई।

आमेर नरेश जयसिंह की आज्ञा से ही इन्होंने बिहारी सतसई की रचना की इसका सतसई के एक दोहे में भी उल्लेख है।

हुकुम पाय जयसाह को, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक संवाद॥

राजा जयसिंह के दरबार में बिहारी का महत्व बढ़ने का कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में इस प्रकार है। 'कहा जाता है कि जिस समय ये कवीश्वर जयपुर पहुँचे, उस समय महाराज अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने लीन रहा करते थे कि राजकाज देखने महलों के बाहर निकलते ही न थे। इस पर सरदारों की सलाह से बिहारी ने यह दोहा किसी प्रकार महाराज के पास भीतर भिजवाया।

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

कहते हैं कि इस पर महाराज बाहर निकले और तभी से बिहारी का मान बहुत अधिक बढ़ गया। महाराज ने बिहारी को इसी प्रकार के सरस दोहे बनाने की आज्ञा दी। बिहारी दोहे बनाकर सुनाने लगे और उन्हें प्रति दोहे पर एक एक अशरफी मिलने लगी। इस प्रकार सात सौ दोहे बने जो संगृहीत होकर बिहारी सतसई के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बिहारी लाल महाराज जयसिंह के दरबारी कवि थे किन्तु उन्होंने अन्य दरबारी कवियों के सदृश महाराज जयसिंह की ही शूरता, वीरता, उदारता, चातुर्य, सौन्दर्य आदि का वर्णन करने में ही अपनी सारी कवित्वशक्ति खर्च नहीं कर दी है। उन्होंने इसका भी वर्णन किया है किन्तु वह दाल में नमक के बराबर। बिहारीलाल प्रसंगानुसार कविता करने में भी बहुत निपुण थे। एक बार जयसिंह ने एक चित्र में सर्प मोर मृग और बाघ को एक वृक्ष के नीचे देख कर प्रश्न किया तो कवि ने तुरन्त कहा—

कहलाने एकत बसत, अहि, मयूर, मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ॥

आमेर नरेश महाराज जयसिंह ने इनका जितना सम्मान किया वह उनकी मृत्यु के बाद बहुत कुछ अंशों में कम हो गया। यह बात इनकी अन्तिम समय की कविता में स्पष्ट दिखाई देती है। इन्होंने एक स्थान पर कहा है—

चले जाहु ह्यां को करत, हाथिन को व्यवहार।
नहिं जानत ह्यां बसत हैं, धोबी और कुम्हार॥

लोगों की अरसिकता पर झुंझला कर कवि कहता है :—

वे न यहाँ नागर बड़े जिन आदर तो आब।
फूल्यो उन फूल्यो भयो, गँवई गाँव गुलाब॥

प्रतीत होता है कि जयसिंह की मृत्यु के बाद इनका केवल सम्मान ही नहीं घट गया बल्कि कहीं इनका अपमान भी हुआ था। अर्थात् इनका राजकवि का पद किसी चापलूसी करने वाले कवि को दे दिया गया। तभी तो इन्होंने रुष्ट होकर कहा है:—

अरे हंस, या नगर में जैयो आप विचारे।
कागनि सों जिन प्रीति करि, कोकिल दई बिड़ारे॥

संसार में चारो ओर से निराशा होने पर मनुष्य का ध्यान ईश्वर की ओर जाता है और वह संसार में प्राप्त हुई निराशा के लिये ईश्वर को उलहना देने लगता है। बिहारी लाल ने भी ईश्वर को उलहना देते हुए कहा है :—

कब को टेरत दीन ह्वै होत न स्याम सहाय।
तुमहू लागी जगत गुरु, जगनायक जग बाय॥

जयशाह की मृत्यु के बाद उनके दो उत्तराधिकारी आपस में लड़ने लगे। जिससे स्वभावतः पीड़ित हुई प्रजा के दुख से पीड़ित होकर कवि ने कहा :—

दुसह दुराज प्रजान को क्यों न बढ़ै दुख द्वन्द।
अधिक अँधेरो जग करै मिलि मावस रविचन्द॥

यह दोहा नीति और कवित्व की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि का समझा जाता है।

बिहारी ने अपनी युवावस्था में अधिकांशतः शृङ्गार रस का ही वर्णन किया। किन्तु जीवन के अन्तिम काल में इन्होंने भक्ति तथा शान्ति रस की रचनाएँ की हैं। सतसई के समाप्त होने का समय कवि ने स्वयं एक दोहे में बताया है :—

* संवत ग्रह शशि जलधि क्षिति, छठ तिथि वासर चन्द।
चैत मास पख कृष्ण में, पूरण आनन्द कन्द॥

---

*काव्य में गणना के लिये निम्नलिखित कवि संकेत माने गये हैं।

१—चन्द्र; क्योंकि इस भूमंडल के लिये चन्द्र एक ही है। इसके लिये क्षिति और भूमि आदि का भी प्रयोग होता है।

२—पक्ष। पक्ष दो होते हैं। कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष।

३—नेत्र। शिव जी के तीन नेत्र माने गये हैं। 'त्रिलोचन'।

४—वेद। वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। ४ के लिये युग (सत्य युग आदि) शब्द का भी प्रयोग होता है।

५—बाण। कामदेव के पांच बाण। सम्मोहन, उन्मादन, शोषण तापन तथा स्तंभन।

६—ऋतु—षड् ऋतु। वसन्त, ग्रीष्म, पावस्, शरद हेमन्त, शिशिर। रस (कटु, आम्ल आदि) का भी उपयोग होता है।

७—सागर—सप्त सागर। लवण, इक्षु, सुरा, सर्पी, दधि, दुग्ध जल। मुनि (सप्त मुनि) से भी ७ का बोध होता है।

८—वसु—अष्ट वसु। भव, ध्रुव; सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभव।

अर्थात् संवत १७१६ वि० (सन १६६२) में चैत्रमास के कृष्ण पक्ष षष्ठी, सोमवार के दिन सतसई की रचना समाप्त हुई। इसके पश्चात् बिहारी लाल कब तक जीवित रहे इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। किन्तु लोगों का अनुमान है कि इसके बाद थोड़े ही समय पश्चात् इनकी मृत्यु हो गई। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् १७२० तक इनके वर्तमान रहने का अनुमान किया है।

९—ग्रह—नवग्रह, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु।

१०—दिक्—दश दिशाएँ। उत्तर, उत्तरपूर्व, पूर्व, पूर्वदक्षिण, दक्षिण, दक्षिण पश्चिम, पश्चिम, पश्चिम उत्तर, ऊर्ध्व और अवसू।

११—रसन = रस + न बिना रस, शून्य।

बिहारी का समय

१७वीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारीलाल एक शृङ्गारी कवि थे। इसमें सन्देह नहीं कि कहीं कहीं इनका शृङ्गार मर्यादा का उल्लंघन कर गया है। और इसीलिये कुछ लोग इन पर वैषयिक साहित्य सृजन का दोषारोपण भी करते हैं। किन्तु यदि इस बात पर हम तात्विक दृष्टि से विचार करें तो हमें यह प्रतीत होगा कि जिस काल में बिहारी पैदा हुए उसी काल में यदि और दूसरा कोई महाकवि होता तो वह भी उसी प्रकार की रचना करता जिस प्रकार की बिहारी ने की है। इसी काल के अन्य प्रमुख कवियों की, जो यद्यपि बिहारी की टक्कर के नहीं थे, रचना को देखकर यह बात भली भाँति सिद्ध हो सकती है। एक तो उस काल ने कवियों को शृङ्गार रस को छोड़ कर अन्य रस में रचना करने के लिये प्रेरणा ही नहीं दी और दूसरे जिन इने गिने कवियों ने काल की प्रेरणा के विपरीत अन्य रसों में रचना करने का प्रयत्न किया वे बुरी तरह असफल हुए। बिहारी के समकालीन कवियों में केवल भूषण ही ऐसे हैं जिन्होंने वीररस में रचना कर सफलता भी पाई।

'यह वह समय था जब भारतवर्ष में किसी प्रकार की हलचल न थी। सम्राट् अकबर का मुग़ल साम्राज्य स्थापित हो चुका था। जहांगीर और शाहजहाँ इस राज्य के कर्णधार बने शिथिल सागर में उसे चला रहे थे। औरंगजेब की अल्पदर्शी

नीति ने राजनीति को अभी चौपट नहीं किया था। शिवाजी महाराज के बलपूर्वक विरोध का समय अभी आ रहा था। राजपूताने में चारों ओर शान्ति थी। लड़ाई दङ्गा, कुटिल नीति, विश्वासघात तथा अराजकता का समय अभी आने वाला था। लोगों को सुखमय जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हुआ था। विदेशी आक्रमणों का भय नहीं रह गया था। देश के भीतर एक सम्राट् था जिसका लोहा सब मानते थे। और जिसके शासन में शान्ति प्रेमी प्रजा निर्भय होकर अपना कामकाज कर सकती थी। यह बहुत ही उपयुक्त समय था जब रसिकजनों की वृद्धि होती, रसमयी कविता का विकास होता और बिहारी लाल सतसई के रचयिता होते।'

'एक ओर देश की ऐसी स्थिति थी, दूसरी ओर भी दृष्टि डालने पर समय की उपयुक्तता दीख पड़ती है। सोलहवीं शताब्दी बीत चुकी थी। हिन्दू धर्म और इसलाम के परस्पर मुठभेड़ का काल समाप्त हो चुकने पर एक नवीन फल निकल रहा था। शिल्प, स्थापत्य, गान विद्या चित्रकारी सबने अपना रसपूर्ण रङ्ग दिखलाया था। सुन्दरता की हर जगह पूछ थी। अकबर के दो उत्तराधिकारियों ने पत्नी प्रेम की हद कर दी थी। उन्होंने संसार में सबसे सुन्दर महल बनवाये थे। संगति और चित्र विद्या को शिखर पर पहुँचा दिया था। वायुमंडल ही कुछ आनन्दमय हो रहा था। ऐसे काल में रसपूर्ण कविता होनी ही चाहिये थी।

यदि यह कहा जाय कि यह काल कला का ही था तो कुछ अत्युक्ति न होगी। नृत्य, गान, वादन, चित्र, शिल्प, स्थापत्य सभी कलाओं की वृद्धि हुई अतः काव्यकला ने भी इसी समय जोर पकड़ा। मुगल शासक ललित कलाओं का अधिक आदर करते थे। इसका भारतीय सभ्यता पर काफी अधिक प्रभाव पड़ा। मुगल प्रभाव के फलस्वरूप कला के बाह्य स्वरूप पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। मुगलकालीन चित्रकला में हमें भावप्रदर्शन की अपेक्षा सजावट, सुन्दर किनारा, प्रधान वस्तु के अतिरिक्त भी अन्य वस्तुओं का बनाव शृङ्गार अधिक दिखाई देता है।

यही दशा कविता की भी हुई। काव्यकला बढ़ने लगी। एक समय ऐसा आ गया कि चाहे किसी प्रकार के भाव यदि सुन्दर अलंकृत भाषा में व्यक्त किये गये हों तो उन्हें काव्य कहा जाने लगा। और यदि वह रचना शृङ्गार रस की हो तो पूछना ही क्या?

श्रेष्ठ कवि की रचना में तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब वर्तमान रहता है। मुसलिम आक्रमण के प्रारंभिक युग में देश में चारों ओर मारकाट मची हुई थी। फलस्वरूप तत्कालीन कविता में वीर रस की ही प्रधानता रही। लोग जब मारकाट से ऊब चुके—किसी का पति, किसी का पुत्र, किसी का भाई, किसी का पिता, किसी न किसी युद्ध में मारे जाने के कारण चारों ओर दुःख का साम्राज्य फैल गया। जनता में एक प्रकार की निराशा

छा गई। और फलस्वारूप जनता का ध्यान ईश्वर की ओर आकृष्ट हुआ। और इसी जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व सूरदास, तुलसीदास जैसे सगुणमार्गी कवियों ने तथा कबीर नानक जैसे निर्गुणमार्गी कवियों ने किया। किन्तु मानव-स्वभाव के अनुसार यह ईश्वर भक्ति अधिक काल तक नहीं टिक सकती थी।

प्रारम्भ में हमें कवियों की रचना में शुद्ध भक्ति दिखाई देती है। और धीरे धीरे उसमें परिवर्तन हो कर ईश्वर में मानव स्वरूप की कल्पना कर भक्त कवि उनके साथ प्रेम करते हुए दिखाई देते हैं। प्रारम्भ में वे यह नहीं भूलते कि उन्होंने ईश्वर में मानव स्वरूप की कल्पना की है। अतः उनके प्रेम वर्णन में कहीं भी सीमा का उल्लंघन नहीं होता और पाठक को प्रतीत होता रहता है कि भक्त भगवान के साथ प्रेमालाप कर रहा है। इस प्रकार की रचना में आदर्श स्वरूप हम सूर और मीरा की रचनाओं को मान सकते हैं। किन्तु बाद में जो कवि हुए वे भक्त तो थे नहीं। अतः भगवान में मानव स्वरूप का आरोपण कर वर्णन करने में वे सफल न हुए। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती भक्त कवियों की तरह भगवान कृष्ण के नाम का उपयोग अवश्य किया किन्तु उनके मनमें कृष्ण का भगवान तथा सर्व शक्तिमान स्वरूप नहीं था बल्कि उनका 'छैल छबीला' तथा 'रसीला' रूप था। अतः इस काल में कवि को व्यक्तिगत भावनाओं के अनुसार वर्णन के समय तथा कृष्ण के नाम का

कुछ महाकवियों द्वारा भी दुरुपयोग हो गया हो तो आश्चर्य नहीं।

इसी काल में महाकवि बिहारी उत्पन्न हुए थे। अतः उनकी कविता में शृङ्गार रस पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ हमें दिखाई दे तो उसमें आश्चर्य ही क्या। किन्तु जयशाह की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारियों से उचित सम्मान न मिलने के कारण इन्हें जब संसार से विरक्ति हुई तब की इनकी कुछ रचनाएँ, यद्यपि वे संख्या में बहुत थोड़ी ., देखने से पता चलता है कि इनमें भी शृङ्गार रस के अतिरिक्त शान्त और भक्ति रस की रचना करने का पूर्ण सामर्थ्य वर्तमान था। सूरदास की तरह इन्होंने भी विनय की है और कहीं कहीं तो शब्द भाव और अर्थ सब मिल गये हैं। दोनों की भाषा व्रज तो है ही। बिहारी ने कहा है :—

संत सुमति न पावहीं परे कुमति कै धंध।
राखो मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगंध।।

इसी भाव पर सूरदास का कथन देखिये :—

कहा होत पय पान कराए विष नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाए, स्वान न्हवाए गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग।
सूरदास खल काली कामरि चढ़त न दूजौ रंग॥

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास की इस चौपाई का—

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू।
राम नाम अवलंबन एकू॥

प्रभाव बिहारी लाल के निम्नलिखित दोहे पर दिखाई पड़ता है।

यह बरिया नहिं और की तू करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि॥

और भी देखिये।

तुलसी—मूक होंहि वाचाल पंगु चढ़ै गिरवर गहन।
जासु कृपा सु दयाल द्रवौ सकल कलिमल दहन॥

बिहारी—लटुवा लौं प्रभु कर गैह निर्गुन गुन लपटाइ।
वहै गुनी करने छुटै निगुनी यै ह्वै जाइ॥

जीवन के अन्तिम काल में इन महाकवि ने ऐसे दोहे निर्माण किये हैं जिनकी गणना लौकिक चातुर्य, श्रेष्ठ अनुभव तथा ईश्वर भक्ति के सर्वोच्च दृष्टान्तों में की जा सकती है। इन दोहों के पढ़ने से विदित होता है कि ये कोरे शृङ्गारी कवि न होकर इनके हृदय में भी भक्ति और ज्ञान की प्रबल धारा भी प्रवाहित थी।

पतवारी माया पकरि और न कछू उपाव।
तरि संसार पयोधि को, हरि नामैं करि नाव॥
बन्धु भये का दीन के को तारयो रघुराय।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाय॥

इतना तो अवश्य ही कह सकते हैं कि बिहारी जैसे महाकवि पर भाव चुराने या अनुवाद करने का दोषारोपण नहीं किया जा जा सकता। यह सही है कि बिहारी तथा उक्त दोनों ग्रन्थों में काफी भाव समानता मिलती है। देखिये:—

अव्वो दुक्कर आरथ पुणो वितस्ति करेसि गमणस्स।
अज्ज विण होन्ति सरला वेणीय तरंगिणो चिडरा॥

—गाथा सप्तशती

अर्थात् अरे दुष्कर कारक। अभी तो वेणी के बांधने से उलझे हुए केश भी सरल नहीं हुए हैं। फिर भी तुम जाने की बात सोच रहे हो।

अजौ न आए सहज रंग विरह दूबरे गात।
अब ही कहा चलाइयति ललन भलन की बात॥

—बिहारी

प्रणमति पश्यति चुम्बति संश्लिष्यति पुलक मुकुलितै रंगैः।
प्रिय संगमाय स्फुरितां वियोगिनी वाम बाहु लताम्॥

आर्यासप्तशती

वाम बाँह फरकति मिलैं जौ हरि जीवन मूरि।
तौ तोही सौं मेटिहौं राखि दाहिनी दूरि॥

—बिहारी

बिहारी सतसई में अधिकांश दोहे शृङ्गार रस के हैं जिनसे बिहारी के सामाजिक तथा पारमार्थिक विचारों के ज्ञान में कोई सहायता नहीं मिलती। जो थोड़े से दोहे इन्होंने अन्य विषय

पर लिखे हैं उनसे इनके विचारों का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इन्हें उस समय देश में प्रचलित धार्मिक संप्रदायों का विवाद तथा कलह पसन्द नहीं था। इनके मत में सभी मतों का सार एक ही परमात्मा की सेवा करना है। इन्होंने कहा है :—

अपने अपने मत लगे वाहि मचावत सोर।
ज्यों त्यों सबही सेइबो, एके नन्द किसोर॥

प्रसिद्ध दार्शनिक वाक्य "सर्वं खलु मिदंब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" में व्यक्त भाव को देखिये कवि ने किस प्रकार समझाने की चेष्टा की है :—

मैं समुझ्यौ निरधार यह जगु काँयो काँय सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ॥

ये राम और कृष्ण दोनों को ही ईश्वर मानते थे किन्तु इन्हें कृष्ण के गोपाल यदुपति आदि नाम अधिक प्रिय प्रतीत होते हैं। देखिये :—

यह बरिया नहिं और की तू करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि॥
और, कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति जदुपति सदा, विपति विदारन हार॥

आपने साधुओं के ढोंग धतूरे पर भी काफी चुभती हुई चुटकी ली है।

बिहारी की शैली

प्रत्येक कवि का कविता करने का एक अलग मार्ग होता है, ढङ्ग होता है। उसी ढङ्ग या मार्ग को शैली कहते हैं। किसी कवि की कविता शैली में ही उसका वास्तविक स्वरूप लक्षित होता है। कविता में कवि के व्यक्तित्व की विशिष्ट छाप को ही शैली कहा जा सकता है। प्रत्येक महाकवि की अपनी एक स्वतंत्र शैली होती है। वह किसी का अनुकरण नहीं करता। किसी महाकवि की शैली का अध्ययन करने के बाद यह पहचानने में कठिनाई नहीं होती कि अमुक कविता उस कवि की है या नहीं। बहुधा लोग कहा करते हैं कि अमुक दोहा तुलसी का नहीं है और अमुक दोहा बिहारी का जान नहीं पड़ता। कारण केवल यह कि उसमें 'तुलसीत्व' या 'बिहारीत्व' का अभाव रहता है। आप सूर और तुलसी के पदों को मिला दीजिये दोनों की शैली का जानकार तुरन्त यह बता देगा कि अमुक पद अमुक कवि का है। अन्य कवियों के दोहों में बिहारी का एक दोहा मिलाकर आप रख दीजिये। वह पुकार पुकार कर कहेगा कि मैं बिहारी का हूँ।

बिहारी की कविता में शैली दृष्टि से सबसे महत्व पूर्ण बात यह पाई जाती है कि वे थोड़े से शब्द समूह द्वारा मनःचक्षुओं के सामने ऐसा दृश्य खड़ा कर देते हैं कि उसे देखते और अनुभव करते ही बनता है। पाठक अनुभव

करता है कि वह सामने वर्णित दृश्य को प्रत्यक्ष सा देख रहा है :—

भौंह उँचे आँचरु उलटि, मौर मोरि मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सों जोरि॥
बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनि हँसै, दैन कहै नरि जाय॥
नासा मोरि नचाइ दृग, करी कका की सौंह।
काटें सी कसकै हिए, गड़ी कँटीली भौंह॥
ललन चलन सुनिपलन में असुवां झलके आइ।
भई लखाइ न सखिन्ह हूँ झूठै ही जमुहाइ।

बिहारी का शब्द संगठन इतना सुदृढ़ है कि उसमें से एक शब्द भी इधर उधर नहीं किया जा सकता। यदि एक शब्द या एक पद हटा कर उसके स्थान पर दूसरा शब्द रख दिया जाय तो सारा मजा ही किरकिरा हो जायगा।

चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट पट झीन।
मानहु सुर सरिता विमल जल उछरत जुग मीन॥

बताइये। इनमें से किस शब्द को हटाने की सामर्थ्य आप में है।

बिहारी अनेकार्थी शब्दों का भी बड़ा ही सुन्दर उपयोग करते हैं। देखिये :—

जोग जुगति सिखये सबै, मनो महामुनि मैन।
चाहत प्रिय अद्वैतता कानन सेवत नैन॥

तोपर वारों उरबसी सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी ह्वै उरबसी समान॥

बिहारी की कविता इतनी हृदय ग्राहिणी होती है, इनके दोहे सजीव सौंदर्य के आधिक्य और भाषा माधुर्य से ऐसे जगमगाते दीख पड़ते हैं कि जी कभी नहीं ऊबता। पढ़ने बैठिये तो बात की बात सतसई समाप्त हो जाती है। सरसता और थोड़े से शब्दों में सजीव दृश्य उपस्थित करने में बिहारी अपना सानी नहीं रखते। बिहारी की कल्पना की उड़ान बहुत ही ऊँची रहती है। यह सच है कि वह कहीं कहीं बहुत ही क्लिष्ट रहती है। किन्तु कल्पना क्लिष्ट रहते हुए भी भावों की सरसता इतनी अधिक रहती है कि पाठक को कल्पना क्लिष्ट है, यह अनुभव ही नहीं होता।

— —

बिहारी की आलोचना

किसी भी कवि की आलोचना करने के पहले यह जानना आवश्यक है कि 'कवि' पद को प्राप्त करने के लिए किन किन गुणों की नितान्त आवश्यकता होती है। साधारण कवि के लिये भी इन गुणों की आवश्यकता है। और इन गुणों के अलावा जिसमें लोकोत्तर प्रतिभा वर्तमान हो उसे महाकवि कहा जाता है। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक काव्य प्रकाशकार मम्मटराज इस सम्बन्ध में लिखते हैं :—

शक्तिर्निपुणता लोके शास्त्र काव्याद्यवे क्षणात्।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

अर्थात् काव्य शक्ति, लोक और शास्त्र में निपुणता, काव्य ज्ञान तथा गुरु से शिक्षा ग्रहण कर अभ्यास करने से कवित्व शक्ति प्राप्त होती है।

शक्ति दो प्रकार की होती है। एक स्वाभाविक और दूसरी अभ्यास द्वारा प्रात अथवा अर्जित। स्वाभाविक अथवा ईश्वर प्रदत्त शक्ति को प्रतिभा कहते हैं। और यह प्रतिभा बहुत कम लोगों को प्राप्त होती है। कहा गया है :—

नरत्व दुर्लभ लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

साधारण कवि के लिये भी इस शक्ति अथवा प्रतिभा की आवश्यकता होती है किन्तु महाकवि तो इसके बिना हो ही नहीं

न जानेगा वह क्या ख़ाक कविता करेगा। अनुभव के बिना ख़ाली प्रतिभा से ही कुछ काम नहीं चल सकता।

इस कसौटी पर जब हम अपने महाकवि को कसते हैं तो वे हमें खरे उतरे हुए दिखाई देते हैं। उनमें प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण दुनियाबी अनुभव मानव-स्वभाव से पूर्ण परिचय, पशु पक्षियों की वृत्तियों का ज्ञान भली भांति मौजूद है। इनके दुनियावी अनुभव के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इन्होंने छोटे छोटे दोहों में जो भाव भर दिये है उनके आधार पर छोटी छोटी शिक्षाप्रद पुस्तकें भी लिखी जा सकती हैं। उन्हें पढ़कर कबीर, रहीम, गिरधर आदि के पद्य स्मरण आने लगते हैं। देखिये—

मरन प्यास पिंजरा परयौ सुवा समय के फेर।
आदर दै दै बोलियत बायस बलि की बेर॥
जात जात बित होत है ज्यौं जिय में सन्तोष।
होत होत त्यौं होय तौ होय घरी में मोख॥

गणित सम्बन्धी ज्ञान का उपयोग बिहारी लाल ने देखिये कितने सुन्दर ढंग से किया है।

कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु॥
कहत रुबै बेंदी दिये आँकु दसगुनौ होतु।
तिय लिलार बेंदी दिये अगनित बढ़तु उदोतु॥

अब बिहारी के ज्योतिष ज्ञान की परीक्षा कीजिये।

मंगल बिंदु सुरंगु मुखु ससि केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु रसमय किय लोभन जगत॥

ईंगुर के लाल टीके स्वरूप मंगल, केसर के आड़े टीके के स्वरूप वृहस्पति और गौर वर्ण के मुखरूपी चन्द्रमा जब एक नाड़ी (नारी) में आ गये तब लोचन जगत रसमय हो गया। और क्यों न हो। ज्योतिष-शास्त्र में लिखा है कि तीनों ग्रह एक नाड़ी में आ जाने से प्रलयकारिणी वृष्टि होती है। देखिये :—

एक नाड़ी समारूढौ चन्द्रमा धरणी सुतौ।
यहि तमभवेज्जीवस्तेदे कार्णविता मही॥
—नरपति जय चर्या

इसी प्रकार

तिय मुख लखि हीरा जरी बेंदी बढ़ै विनोद।
सुत सनेह मानो लियो विधु पूरण बुध गोद॥

इस दोहे में बिहारी के गूढ़ ज्योतिष ज्ञान का परिचय है। कहा जाता है कि चन्द्रमा और बुध का संयोग होने से अनेक प्रकार के लाभ (धन प्राप्ति, सन्तान प्राप्ति, सम्मान प्राप्ति) और आनन्द प्राप्त होते हैं।

प्रिय व्यक्ति के किसी स्थान से चले जाने पर उस स्थान की ओर बार-बार देखना यह मानव स्वभाव है। बिहारी ने

इस साधारण बात का चित्रण कितने सुन्दर ढंग से किया है :—

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग सिर मौरु।
बिनहूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु॥

बहुत दिनों के बाद प्रिय व्यक्ति के मिलने पर मनुष्य का हृदय प्रेमवश गद्‌गद हो जाता है, उसका गला भारी पड़ जाता है, उसकी आवाज़ साफ़ नहीं निकलती। इस मानव स्वभाव का चित्रण बिहारी ने बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से किया है।

सुरति न ताल न तरन की, उठ्यौ न सुरु ठहराइ।
एरी राग बिगारिगो बैरी बोल सुनाइ॥

प्रकृति के चित्रण में बिहारी अपने ढंग के अनोखे कवि हैं। इनके प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि 'इनके प्रायः सभी दोहों में प्रकृति पर्यवेक्षण देख पड़ता है। इनका षड्ऋतु वर्णन इनके काव्य की उत्कृष्टता का पूर्ण परिचय देता है। बिहारी की दृष्टि संसार भर के सभी पदार्थों पर बड़ी पैनी पड़ती थी।* दक्षिणानिल का वर्णन करते हुए बिहारी ने लिखा है :—

* मि० एफ० ई० की साहब ने अपने 'हिन्दी साहित्य' शीर्षक पुस्तक में लिखा है कि 'He is perhaps at his best in his description of natural phenomena, as when he describes the scent laden breeze under the guise of a way-worn piligrm from the south.

चुवत सेत मकरंद कन तरु तरु तर विरमाय।
आवत दक्षिण देस से थक्यो बटोही वाय॥
रुनित भृङ्ग घण्टावली झरत दान मधु नीर।
मन्द मन्द आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर॥

घोड़े की चाल के साथ पवनगति की तुलना किस प्रकार की गई है :—

रुक्यौ साँकरैं कुंज मग करतु झाँकि झकुरातु।
मन्द मन्द मारतु तुरँगु खूँदतु आवतु जातु॥

'खूँदतु' की ओर देखिये। प्रतीत होता है कि कहीं आस-पास सचमुच ही घोड़ा खूंद रहा है।

विहारी का ऋतु वर्णन भी अनुपम है। दोहे को पढ़कर पाठक उस ऋतु के वातावरण का ही प्रत्यक्ष अनुभव करने लगता है। जेठ की दुपहरिया का यह वर्णन देखिये।

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह॥

क्या खूब कहा। छाँह भी छाया चाहती है। कितनी भीषण गरमी है। और भी देखिये :—

कहलाने एकतबसत अहि मयूर छाँह मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ॥

शरद के आगमन का वर्णन देखिये कवि ने किस प्रकार किया है।

घनघेरा छुटिगौ हरषि चली चहूँ दिसि राह।
कियौ सुचैनो आई जगु सरद सूर नरनाह॥

गरमी के दिनों में सूर्य की ओर देखना जितना कठिन है उतना ही माघ के महीने में उनकी ओर देखना आसान है। क्योंकि शीत के कारण सूर्य में उतना अधिक तेज नहीं रह जाता, देखिये। बिहारी ने इस स्वाभाविक सत्य को किस प्रकार अंकित किया है :—

लगत सुभग सीतल किरन निसि सुख दिन अवगाहि।
माह ससी भ्रम सूर त्यों रहति चकोरी चाहि॥

मानव जीवन के एक एक अंग से बिहारी लाल परिचित थे। बिहारी सतसई का लगभग प्रत्येक दोहा मनुष्य जीवन के एक विशिष्ट अंग का दिग्दर्शन कराता है। स्त्री पुरुष का व्यवहार सदाचार दुराचार प्रेम, भक्ति लोभ, वैराग्य आदि सभी अंगों का चित्रण पं० बिहारी लाल ने किया है। मानव जीवन का इन्हें इतना पूर्ण ज्ञान था और प्रत्येक भावना को तथा साधारण वस्तुओं के गूढ़ अर्थ को ये इतना अधिक समझते थे कि पाठक इनके चित्रण को देखकर दंग रह जाता है। इन्होंने नागरी तथा ग्राम्य-नायिकाओं का तो अच्छा वर्णन किया ही है किन्तु प्रसंगानुसार इन्होंने जिन किन्हीं भी वस्तुओं का वर्णन किया है उनसे कवि की अद्भुत निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। मिश्र बन्धुओं के इस कथन में विशेष अतिशयोक्ति नहीं है कि 'प्रकृति निरीक्षण और उसके

यथोचित वर्णन में ये कविवर भाषा साहित्य में सर्वश्रेष्ठ हैं। श्री पद्मसिंह शर्मा भी इन्हें मानव प्रकृति का पुरोहित मानते हैं।

बिहारी का काल शृङ्गार रस काल था। शृङ्गार में सौंदर्य प्रधान होता ही है। इनके समय के अन्य कवियों ने भी सौंदर्य का—मानव-स्त्री—सौंदर्य का वर्णन किया है। किन्तु बिहारी के सौंदर्य वर्णन को देखकर हमें कहना पड़ता है कि यह इनका मुख्य विषय है। स्त्री-सौंदर्य का ऐसा कोई भी अङ्ग नहीं छूटा जिसका वर्णन इन्होंने सुन्दरता के साथ न किया हो। नयन, नासिका, केश जूड़ा, कपोल मुख आदि का तो इन्होंने सुन्दर वर्णन किया ही है किन्तु सौन्दर्य के तत्कालीन प्रसाधन भाल की बेंदी, कर्ण फूल, बिछियाँ, मेंहदी-महावर आदि का भी इन्होंने अनूठा चित्रण किया है। स्वाभाविक सौंदर्य ही अपेक्षाकृत अधिक नयन सुखद होता है। इसे जिस प्रकार बिहारी ने बताया और सुन्दर स्त्री के लिये आभूषण व्यर्थ है यह जिस प्रकार आपने अङ्कित किया है वैसा शायद ही रीति-काल के कवियों में कोई कर सका है। आप कहते हैं :—

पहिरि न भूषन कनक के कहि आवत यहि हेत।
दर्पन के से मोरचे देह दिखाई देत॥

इनका सौन्दर्य वर्णन ऐसा है कि सौन्दर्य की सजीव मूर्ति आँखों के सामने आ जाती है। इनके सौन्दर्य चित्रण के कुछ नमूने देखिये :—

त्यौं-त्यौं प्यासे ई रहत, ज्यौं-ज्यौं पियत अघाय।
सगुन सलोने रूप की जुन चख तृषा बुझाय॥
लिखन बैठि जाकी सबी गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥
नैकु हँसौ ही बानि तजि लख्यौ परत मुख नीठि।
चोका चमकति चौंधि में, परत चौंधि सी डीठि॥
तिय कित कमनैती पढ़ी बिनु जिह भौंह कमान।
चल चित बेझैं चुकति नहिं, बंक बिलोकनि बान॥
छुटे छुटावै जगत तें सटकारे सुकुमार।
मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार॥
मानहु विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोछन को किये भूषन पायंदाज॥

कोमलता के वर्णन में तो कवि ने कमाल कर दी है :—

छाले परिबे के डरनि सकै न हाथ छुवाय।
झिझकति हिरा गुलाब के, झंवा झँवायत पाय॥
बरन बास सुकुमारता, सब विधि रही समाय।
पंखुरी लगी गुलाब की लाल न जानी जाय॥

सौन्दर्य का वर्णन करते-करते कहीं-कहीं बिहारी ने सीमा पार कर दी है। किन्तु ऐसे स्थल थोड़े ही हैं। उदाहरण के लिये बिहारी का निम्नलिखित दोहा देखिये :—

पत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास।
प्रति दिन पुन्योई रहे आनन ओप उजास।

शृङ्गार के दो भेद होते हैं। एक संयोग शृङ्गार और दूसरा वियोग अथवा विरह शृङ्गार। बिहारी का संयोग स्वरूप प्रेम क्रीड़ाएं, मान और मनावन आदि का ऐसा चित्र खींचा है है कि देखते ही बनता है।

पन तनकौं निकसत लसत हँसत हँसत इत आइ।
दृगखंजन गहि लै चल्यौ चितवनि चैपु लगाइ॥
जुवति जोन्ह में मिलि गई, नैक न होत लखाइ।
सौंधे कैं डोरै लगी अली चली संग जाइ॥
पहुँचत डटि रन सुभट लौ रोकि सकैं सब नाहि।
लाखन हू की भीर में भाखि उते चलि जाहि॥
सखी सिखावति मान विधि सैननि बरजति बाल।
हरै कहै मो हीय में बसत बिहारी लाल॥

वास्तव में शृङ्गार रस का वर्णन फिर हमें जितना सुन्दर और आकर्षक होता है उतना संयोग में नहीं। विरह वर्णन में बिहारी की प्रतिभा पूरी तरह जागृत हुई है। उन्होंने विरह का एक एक पहलू खोलकर सामने रख दिया है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि विरह वर्णन में विश्व साहित्य में भी शायद ही इनकी टक्कर का कोई मिले। 'अन्य कवियों की अपेक्षा बिहारी ने विरह का वर्णन कुछ विचित्रता से किया है। इनके वर्णन में एक निराला बांकापन है। एक विशेष वक्रता है। व्यंग्य का प्राबल्य है अतिशयोक्ति और अत्युक्ति का (जो कविता की जान और रस की खान है) अत्युत्तम उदाहरण

है।' विरह की स्थिति नायक नायिका पर उसका प्रभाव, पत्र लिखना, बिना लिखे ही उसे भेज देना, या पढ़ लेना, संयोग में सुखद प्रतीत होने वाली वस्तुएँ दुखद प्रतीत होना आदिक ऐसी सुन्दरता के साथ वर्णन किया गया है कि बस पढ़ते ही बनता है। बिरह वर्णन में बिहारी ने कलम तोड़ दी है।

नित संसौ हंसौ बचतु मानौं इहि अनुमान।
बिरह अगनि लपटनि सके झपट न मीच सिचान॥

हौं ही बैरी बिरह बस, कै बौरो सब गाम।
कहा जानिये कहत है ससिहि सीत कर नाम॥
सुनत पथिक मुंह माह निसि, लुरों चलति उहि गाम
बिन बूझे बिनही सुने जियति विचारी बाम।
रह्यो रोंचि अत्तन लह्यौ अवधि दुसासन चीर।
आली बाढ़त विरह ज्यों, पंचाली को चीर।
विरह विकल बिनही लिखो पाती दई पठाय।
अंक विहीनी यो सुचित, सूनै बांचत जाय॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि बिहारी लाल में लोक निपुणता का गुण पर्याप्त मात्रा में उपस्थित है। उनकी कविता में हमें प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है, मानवस्वभाव के अंगों अंगों से उनका परिचय दिखाई देता है और पशु-पक्षियों की वृत्तियों का ज्ञान भी उन्हें अच्छी तरह है—यह स्पष्ट दिखाई देता है।

शास्त्र निपुणता

अब हम कवि के लिये आवश्यक तीसरा गुण शास्त्र निपुणता की दृष्टि से विचार करें। शास्त्र निपुणता से हमारा तात्पर्य काव्य रीति से है। काव्य रीति में भाषा, पिंगल, रस, भाव, व्यंग्य अलंकार आदि सभी काव्य के आवश्यक अंगों का समावेश हो जाता है। इनमें से हम सर्व प्रथम बिहारीलाल की भाषा पर विचार करें।

भाषा को काव्य का शरीर कहा गया है। जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा नहीं रह सकती, उसी प्रकार भाषा के बिना विचार नहीं हो सकता। जिस प्रकार के काव्य की रचना करनी हो उस प्रकार की भाषा आवश्यक होती है। सभी भाषाएं सभी भावों को व्यक्त नहीं कर सकती। इतना ही नहीं छन्द विशेष के लिये भी कोई विशेष भाषा उपयुक्त होती है। अवधी भाषा वीररस की कविता के लिये उतनी उपयुक्त नहीं होती जितनी कि ब्रजभाषा। इसी प्रकार छन्दों की भी बात है। चौपाई और बरवै छन्द जिस प्रकार अवधि में बन सकते हैं उस प्रकार और किसी भी भाषाओं में नहीं। सवैया कवित्त आदि जैसे ब्रजभाषा में अच्छे लगते हैं वैसे और किसी भाषा में नहीं। दोहा और सोरठा दोनों ही में अच्छे लगते हैं।

बिहारी सतसई की रचना निखरी हुई ब्रजभाषा में की गई है। कहीं कहीं देशी और विदेशी शब्दों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। बिहारी ने फ़ारसी, अरबी, तुर्की और राजपूतानी

शब्दों के सहारे भी बड़ी अच्छी उक्तियाँ कहीं हैं। कहीं कहीं प्रान्तीय शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बिहारी की भाषा की आलोचना करते हुए लिखा है कि बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़ मरोड़ कर विकृत करने की आदत अधिकांशतः पाई जाती है। भूषण और देव ने शब्दों का बहुत अंग भंग किया है और कहीं कहीं गढ़ंत शब्दों का व्यवहार किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से बहुत कुछ मुक्त है। दो एक स्थल पर ही 'स्मर' के लिये 'समर' 'ककै' ऐसे कुछ विकृत रूप मिलेंगे।

मिश्र बन्धुओं ने बिहारी की भाषा पर कतिपय दोषारोपण किये हैं किन्तु उनमें से अधिकांश भ्रमवश ही है। बिहारी ने कुछ शब्दों को अवश्य तोड़ा मरोड़ा है किन्तु वह इतना नहीं कि उससे उसका मूल रूप सामने आ ही न सके। उन्होंने 'अग्नि' को 'अगिन' 'मोक्ष' को 'मोख', 'इष्ट' को 'ईठि', 'बाट' को 'बट', 'सांस' को 'संसो' चढ़कर' को 'चाढ़' लिखा है। बिहारी ने कुछ शब्द तुक के लिये भी बिगाड़े हैं। और यह दोष तो हिन्दी के अधिकांश कवियों में है। कवि कुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास भी इस दोष से मुक्त नहीं हो सके हैं। बिहारी ने जिन शब्दों का विकृत रूप लिखा है वैसा अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है। 'क्ष' को 'ख' लिखना साधारण

बात है। 'अक्षर' को 'आखर' कितनों ने ही लिखा है। 'अदब' 'गनी' 'इजाफा', 'ताफता', मतीर आदि अनेक विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। ठेठ बुन्देलखंडी के भी 'स्यों' (सहित) 'खए'(पखौरा) 'दूं का देना' (छिपकर सुनते फिरना) 'लखवी' 'गनवी' आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है इन्होंने 'छाकु' 'उड़ायक' आदि दो चार शब्द अवसर पड़ने पर गढ़ लिये हैं। और यदि ढूँढ़ने का निश्चय ही किया जाय तो बिहारी की रचना में व्याकरण और पद सम्बन्धी दोष भी मिल सकते हैं। किन्तु सब मिलाकर यदि देखा जाय तो बिहारी की भाषा अत्यंत मनोहर है। इनके दोहे भाषा माधुर्य से और सौन्दर्य के आधिक्य से लहलहाते दीख पड़ते हैं। सुन्दर सजीव शब्दों की भरमार है। पन्ने उलटते जाइये जी नहीं ऊबता। पद और भी हृदयग्राही होते जाते हैं। बात की बात में सतसई समाप्त हो जाती है। तब क्रोध सा उत्पन्न होता है कि कविने आगे क्यों नहीं लिखा। फिर सोचने पर ज्ञात होता है कि अब बचा ही क्या है जो लिखा जाता।

बिहारी ने दोहा और सोरठा को छोड़ कर और किसी शब्द का उपयोग नहीं किया। अतः इनके पिंगल सम्बन्धी ज्ञान पर विशेष कुछ कहा नहीं जा सकता। दोहा और सोरठा द्विपदी छन्द हैं जिसका प्रत्येक पद २४ मात्राओं का होता है। दोहे के पद में १३ मात्रा पर और सोरठे के पद में ११ मात्रा पर विराम होता है। पद के दोनों खंडों को उलट फेर कर पढ़ने से दोहा सोरठा और सोरठा दोहा हो जायगा।

रस अलंकार आदि

—:०:—

हम अब रस अलंकार आदि की दृष्टि से बिहारी की कविता पर विचार करें। सतसई की रचना यद्यपि लक्षण ग्रन्थों के रूप में की गई नहीं प्रतीत होती, किन्तु दोहे पढ़ कर यह अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि इनकी रचना लक्षण ग्रन्थों को सामने रख कर की गई है। नख-सिख वर्णन, नायिका-भेद षड्ऋतु वर्णन, लक्षण, व्यंजना आदि के उदाहरण हमें सतसई में भरे पड़े मिलते हैं। कतिपय टीकाकारों ने दोहों को साहित्यिक क्रम से रखा भी है। किन्तु यह स्पष्ट है कि स्वयं बिहारी ने इस प्रकार कोई क्रम नहीं रखा था। यह केवल टीकाकारों ने अपनी अपनी सुविधा और बुद्धि के अनुसार किया है। किसी भी प्रामाणिक प्राप्त प्रति में ऐसा विभाग नहीं मिलता। बिहारी ने काव्य रचना ग्रन्थरूप में न कर मुक्तक रूप में की है। प्रत्येक दोहा अपने विषय को प्रकट करने में पूर्णतः समर्थ है। दूसरे दोहों से न उसका कोई सम्बन्ध है और न उस सम्बन्ध की आवश्यकता ही है। जिस समय कवि को कोई कल्पना सूझी उसने उसे संपूर्ण रूप से एक दोहे में ठूंस कर भर दिया।

बिहारी की रचना का विभाजन एक अन्य प्रकार से भी किया जा सकता है। एक अधिकांशतः वे दोहे, जो शृंगार रस से परिपूर्ण हैं और जिनमें नायक नायिका का सौन्दर्य,

अंग प्रत्यंग की शोभा और आभूषणों की छटा वर्णित है। प्रेम क्रीड़ा, उससे उत्पन्न विभिन्न भावों और दशाओं का चित्रण, और विरह मान गर्व आदि अनेक स्थितियों का निरूपण है। दूसरे वे दोहे हैं, जिनमें लोकरीति और सामाजिक व्यवहारों का चित्रण और जो चातुर्य पूर्ण और शिक्षाप्रद है। तीसरे वे दोहे हैं जिनमें ईश्वर वन्दना तथा भक्ति का वर्णन है। दूसरे और तीसरे प्रकार के दोहों के सम्बन्ध में हम पहले विस्तार से विचार कर चुके हैं। यहां हम पहले प्रकार के दोहों पर कुछ विचार करेंगे।

बिहारी का नायिका वर्णन देखिये। नायिका स्नान कर रही है। कितना स्वाभाविक और मनोहर चित्रण है।

मुँह पखारि मुँडहरि भिजे सीस सजल कर छाय।
मौरि उँचै, घूँटेन नैन नारि सरोवर न्हाय॥
मुँह धोवति एँडी घसति हँसति अनगवति तीर।
धंसति न इन्दीवर नयनि कालिंदी के तीर।

बिहारी के स्वकीया नायिका का किया हुआ वर्णन सुन्दर है किन्तु परकीया नायिका के चित्रण में बिहारी ने कमाल कर दिया है। श्रीकृष्ण और राधा के विहार और विलास का जो चित्र इन्होंने अंकित किया है उसमें सूरदास की तरह सौंदर्य की आत्मानुभूति नहीं है। किन्तु नारी सौन्दर्य का पति और पत्नी के आनन्दमय सम्बन्धों का चमत्कार पूर्ण चित्रण करने में बिहारी अकेले हैं। इसी कारण बिहारी लाल पर यह दोष

जाती है वह संभवतः इसी रूढि की स्थापना के कारण ही है। यदि उस समय नायिका भेद का इतना प्रचार न होता तो शायद बिहारी भी इस प्रकार पहेली बुझाने का साहस न करते।

बिहारी का नखशिख वर्णन भी बहुत सुन्दर है। संस्कृत के महाकाव्यों में नखशिख वर्णन की प्रणाली यह है कि मर्त्य जीवों का नखशिख वर्णन मस्तक से प्रारम्भ किया जाता है और देवताओं का पैर से। बिहारी की रचना होने के कारण इसमें वह प्रश्न ही नहीं उठता इन्होंने प्रत्येक अंग का अलग अलग वर्णन किया है। नायिका के सुघर बालों का यह वर्णन किसे नहीं लुभा सकता।

सहज सचिक्कन स्याम रुचि, सुचि सुगंध सुकुमार।
गनत न मन पथ कुपथ लखि बिथुरे सुथरे बार॥
कच समेटि कर, भुज उलटि, खए सीस पट डारि।
काको मन बांधे न यह, जूरो बांधनि हारि॥
छुटे छुटावै जगत तें, सटकारे सुकुमार।
मन बांधत बेनी बंधे नील छबीले बार॥

नेत्र तो बिहारी का खास विषय है। नेत्र की सुन्दरता और सुघड़ता का वर्णन बिहारी ने विभिन्न प्रकार से किया है।

खेलन सिखये अलि भले चतुर अहेरी मार।
कानन चारी नैनमृग, नागर नरनि सिकार॥

इस दोहे में 'कानन चारी' शब्द ध्यान देने योग्य है।

श्लेष्ट शब्द का प्रयोग कर कवि ने नयनों की विशालता का अनूठा चित्रण किया है। और भी देखिये :—

अरते टरत न वर परे दई मरक मनु मैन।
होड़ा होड़ी बढ़ि चले चित चतुराई नैन॥

सायक सम मायक नयन रंगे त्रिविध रंग गात।
सखौ बिलखि दुरि जात जल लखि जल जाति लजात॥

जोग जुगुति सिखये सबै, मनो महामुनि नैन।
चाहत प्रिय अद्वैतता कानन सेवत नैन॥

वर जीते सर नैन के, ऐसे देखे नैन।
हरिनी के नैनान ते हरिनी के ये नैन॥

फिरि फिरि दौरत देखियत निचले नैकु रहैं न।
ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन॥

कहत नटत रीझत खिजत, मिलत खिलत लजियात।
करे मौन में करत हैं नैनन ही सौं बात॥

करे चाह सों चुटकि कै खरे उड़ौहैं मैन॥

आखिरी दोहे में 'खुँदी' शब्द पर ध्यान दीजिये। अब नाक की यामा देखिये :—

जटित नीलमणि जगमगति सींक सुहाई नाक।
मनो अली चंपक कली बसि रस लेत निसांक॥

बेधक मनियारे नयन बेधत कर न निषेध।
बरबस बेधत मो हियो, तो नासा को बेध॥

चिबुक की सुषमा पर बिहारी की कल्पना देखिये :—

ललित स्याम लीला ललन चढ़ि चिबुक छवि दून।
मधु छाक्यौ मधुकर परयौ, मनो गुलाब प्रसून॥
डारे ठोड़ी गाड़ गड़ि नैन बटोही मारि।
चिलक चौंधि में रूप ठग हाँसी फाँसी डारि॥

मुख, उरोज, कमर, जंघा पैर आदि सभी अंगों का वर्णन कवि ने बड़ी ही सुन्दरता और मधुरता के साथ किया है। यदि यहां पर सबके उदाहरण देने का प्रयत्न किया जायगा तो पुस्तक का आकार बहुत बढ़ जायगा।

बिहारी अलंकारों के उत्कट भक्त थे। इनके एक एक दोहे में पाँच, सात, दस पन्द्रह तक अलंकार मौजूद हैं। इनकी उपमाएँ अद्वितीय होती हैं। गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर उपमा अलंकार की रचना में बिहारी के समान दूसरा कोई कवि नहीं है।

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अङ्ग।
दीपति देह दुहून मिले, दिपति ताफता रंग॥
सबही तन समुहाति छिन चलति सबनि दै पीठि।
वाही तन ठहराति यह कि बलनुमा लौ दीठि॥
डीठि बरत बाँधी अटनि, चढ़ि धावत न डरात।
इत उत तें चित दुहुनि के, नट लौं आवत जात॥
सोहन ओढ़े पीत पट श्याम सलोने गात।
मनौ नील मनि सैलपर आतपु परयौ प्रभात॥

कोमलता, उज्ज्वलता और विरह के वर्णनों में कवि ने बड़ी ही खोज खोज कर और अनोखी उपमाएँ दी हैं।

बिहारी की दो उत्प्रेक्षाएँ भी देखिये :—

थोरे ही गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनो भये आज कालिह के दानि॥
जोन्ह नहीं यह तुम बहै किये जु जगत निकेतु।
होत उदै ससि के भयो मानहु सस हरि सेतु॥

कवि ने रूपक अलंकार का भी बड़ी सुन्दरता के साथ लिखा है।

स्वेद सलिल रोमांच कुसु गहि दुलही अरुनाथ।
दियौ हियो सङ्ग हाथकैं, हथलेयें ही हाथ॥
जद्यपि सुन्दर सुघर पुनि सगुनौ दीपक देह।
तऊ प्रकाश करै तितौ भरियै चितैं सनेह॥
करतु जातु जेती कटनि बढ़ि रस सरिता सोतु।
आल बाल उर प्रेम तरु तितौ तितौ दृढ़ होतु॥

असंगति और विरोधाभास की ये मार्मिक उक्तियाँ कितनी मनोहर है :—

दृग अरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हिए दई नई यह रीति॥
तंत्री नाद कवित रस सरस राग रति रङ्ग।
अन बूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अङ्ग॥

सौंदर्य सृष्टि के साधनों में बिहारी ने शब्दालंकार तथा अर्थालंकार के विभिन्न रूपों का यथेष्ट प्रयोग किया है। उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, अतिशयोक्तियों आदि का प्रयोग अधिकांश

में संयत और यत्र-तत्र असंयत मात्रामें किया गया है और यह उनकी कलाकी शक्ति के अनुरूप ही हुआ है। इन अलंकारों के नियोजन में कवि शायद उतना सफल न होता यदि बिहारी के शब्द चयन की प्रतिभा पर्याप्त मात्रामें उपस्थित न होती। उन्होंने शब्दों को पदों के भीतर उसी तरह बैठाया है जिस प्रकार अंगूठी में नगीना जड़ा जाता है।

सतसई के सम्बन्ध में इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है :—

विवरणात्मक तथा अन्य सरल शैलियों को छोड़कर केवल काव्यकला में सतसई शायद सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है। प्रत्येक दोहा स्वतंत्र और स्वयं पूर्ण है और भाषा संहति, वर्णन तथा अलंकार चातुर्य में कौशल की चरम सीमा है। उदाहरण के लिये कुछ दोहे देखिये :—

डर न टरै नींद न परै, हरै न काल विपाक।
छिनक छाकि उछकै न फिरि खरो विषम छवि छाक।
केसरि कै सरि क्यौं सकै, चंपक कितक अनूप।
गातरूप लखि जात दुरि, जातरूप को रूप॥
भूषन भार संभारिहैं क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पाय न परत धर सोभा ही के भार॥
न जल धरत हरि हिय धरत, नजुक कमला बाल।
भजत भार भयभीत ह्वै, घन चन्दन बनमाल॥

वास्तव में बिहारी के दोहे सूर और तुलसी के पदों और

चौपाइयों की तरह सार गर्भित हैं। ऐसे दोहे आज तक किसी ने लिखे नहीं। अनेक कवियों ने सतसई की रचना कर बिहारी का निष्फल अनुकरण करने का प्रयत्न किया है। बिहारी सतसई के सम्बन्ध में निम्नलिखित कथन आक्षरशः सत्य है :—

सतसैया के दोहरे जिमि नावक के तीर।
देखत को छोटे लगै घाव करै गम्भीर॥
जो कोऊ रस रीति को समुझौ चाहे सार।
पढ़ै बिहारी सतसई कविता को सिंगार॥
भांति-भांति के बहुअरथ यामें गूढ़ अगूढ़।
जाहि सुने रस रीति को मन समुझत अति मूढ़॥
विविध नायिका भेद अस अलंकार नृपनीति।
पढ़ै बिहारी सतसई जाने कवि रस रीति॥

बिहारी की रचना का इतना आलोड़न करने के बाद बिहारी ने गुरू से शिक्षा लेकर अभ्यास आदि किया या नहीं इस पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। क्योंकि बिना अध्ययन के इतना विस्तृत और सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। बिहारी के दोहों से यह स्पष्ट है कि कवि को संसार का विस्तृत ज्ञान प्राप्त है। जिस बात का वे वर्णन करते हैं, पूरे अधिकार के साथ करते हैं।

बिहारी की तुलना

—:o:—

हिन्दी साहित्य के महाकवियों में कविवर बिहारीलाल का विशेष स्थान है। उनकी रचना के कुछ कुण ऐसे हैं जिनके निकट भी पहुँचना भाषा साहित्य अनेक कवियों को दुर्लभ है। कल्पना की उड़ान तथा चमत्कार पूर्ण अलंकारों की स्वाभाविक और सुमधुर रचना में तुलसी, सूर और कबीर को छोड़कर भाषा साहित्य का शायद ही कोई कवि ऐसा हो जिसकी तुलना बिहारी के साथ समानता के दृष्टिकोण से की जा सके। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य को कीर्ति अमर रखने वाले सूर तुलसी और कबीर के साथ बिहारी का बराबरी का दावा भी स्थापित नहीं हो सकता। वास्तव में प्रत्येक महाकवि अपने अपने क्षेत्र में अकेला होता है। उस क्षेत्र पर उसका एकाधिकार होता है। यदि ऐसा न हो तो उसे महाकवि की पदमी प्राप्त हो ही नहीं सकती। कविकुल चूड़ामड़ि गोस्वामी तुलसीदास जैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा तो ईश्वर प्रसाद से ही प्राप्त होती है। उनका स्थान सामान्य महाकवियों से बहुत ही ऊँचा है। मेरी समझ में महाकवियों द्वारा निर्मित साहित्य की तुलना कर किसी को बड़ा और किसी को छोटा निश्चित करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना उचित नहीं है। किसी महाकवि की रचना के साथ अन्य कवियों की रचनाओं का आनन्द उठाने

की दृष्टि से विभिन्न कवियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। मैं आगे की पंक्तियों में बिहारी का तुलनात्मक अध्ययन केवल इसी दृष्टिकोण को सामने रख कर करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। सर्व प्रथम हिन्दी साहित्य के सर्व श्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं के साथ 'हम' बिहारी लाल की रचनाओं को मिलाकर देखें।

ब्रज नागरी राधा की तनद्युति घनश्याम के शरीर पर पड़ने से जो स्थिति हुई उसका वर्णन करते हुए बिहारी ने यह प्रसिद्ध दोहा लिखा है :—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, स्याम हरित दुति होइ॥

इसी भाव को व्यक्त करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं :—

गर्व करहु रघुनन्दन जनिमन माँह।
आपन रूप निहारहु सिय कै छाँह॥

संगति के कारण ही मनुष्य उच्च स्थान प्राप्त करता है, इस भाव को लेकर बिहारी ने शृङ्गार रस में सराबोर यह दोहा लिखा :—

अजौं तरयौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक रंग।
नाक बास बेसरि लह्यौ बसि मुकतनु संग॥

इसी भाव पर गोसाईं जी की रचना देखिये :—

मति कीरति गति भूति भलाई, जब जेहि यत्न जहां जेहि पाई।

सो जानव सत्संग प्रभाऊ, लोकहु वेद न आन उपाऊ।
शठ सुधरहिं सत संगति पाई, पारस परसि कुधातु सुहाई।

नेत्रों की मछलियों से उपमा देने में दोनों ही कवियों ने कमाल कर दी है, देखिये :—

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट पट झीन।
मानहु सुर सरिता विमल जल उधरत जुग मीन॥

—बिहारी

रामहिं चितइ चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मन सिज मीन युग, जनु विधु मंडल डोल॥

—तुलसी

प्रियतम को अंगूठी के दर्पण में इकटक देखने वाली नायिका का वर्णन देखिये :—

कर मुंदरी की आरसी प्रतिबिम्बित प्यौ पाइ।
पीठि दियै निधरक लखै इकटक डीठी लगाइ॥

—बिहारी

इसी कार्य में संलग्न तुलसी की सीता का हाल सुनिये:—

राम के रूप निहारति जानकि कंकण के नग की पर छांहीं।
ताते सबै सुध भूल गई कर टेक रही पल टारति नाहीं॥

विरह अपनी सीमा पर पहुँचने के बाद होने वाली स्थिति के सम्बन्ध में दोनों की, कल्पना लगभग समान है।

मरिबे को साहसु करै बढ़ैं विरह की पीर।
दौरति ह्वै समुही ससी सरसिज सुरभि समीर॥

—बिहारी

राम वियोग कहा सुनु सीता, मोकह सकल भयउ विपरीता।
नूतन किसलय मनहुँ कृशानू लाल निशा सम निशि शशि भानू॥
कुवलय विपिन कुन्त वन सरिसा, वारिदतप्त तेल जनु बरिसा।
जेहि तरु रहौं करत सोइ पीरा, उरगश्वास सम त्रिविध समीरा॥

—तुलसी

एक बार देखे हुए रूप को दोनों ही नहीं भूल सकते। अंतर केवल भावना का है :—

सोवत जागत सुपन बस रस रिस चैन कुचैन।
सुरति श्याम घन की सुरति बिसरै हूँ बिसरै न॥

—बिहारी

वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं।
जोग जुगुति अरु मुकुति विधि वा मुरली पर वारौं॥

—बिहारी

महाकवि सूरदास के भी अनेक भाव बिहारी से मिलते जुलते से हैं। नेत्रों को खंजन का उपमा देने में दोनों के भाव लगभग मिल गये हैं :—

रस सिंगार मंजनु, किए कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजन हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन॥

—बिहारी

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट स्रवनन के उलटि उलिट ताटंक फँदाते।

सूरदास अंजन गुन अटके नातरु अब उड़ि जाते ॥

—सूरदास

रूप छवि के नशे में दोनों ही मस्त हैं। देखिये न क्या कहते हैं :—

डर न टरै नींद न परै हरै न काल विपाकु।
छिनकु छाकि उछकै न फिरि खरौ विषमु छबि छाकु ॥

—बिहारी

मोहन मुख मुसकानि मनहुँ विष जाति मरे सो मोर।
फुरै न मंत्र जंत्र गति नाहीं चले गुनी गुन डोर।
प्रेम प्रीति विष हिरदै लागी डारत हैं तनु जोर।
निर्विष होत नहीं कैसेहु करि बहुत गुन पचि होर।

—सूरदास

जो सुन्दर प्रतीत हो वही सुन्दरता है इस भाव को दोनों ने ही बड़े कौशल के साथ व्यक्त किया है :—

समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ।

—बिहारी

ऊधो मनमाने की बात।
....
सूरदास जाको मन जासो सोई ताहि सुहात।

—सूरदास

भगवान् को ताना देने में दोनों ही कोई कोर कसर बाकी

नहीं रखते :—

ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होउँगौ हौ हरि अपनी चाल।
हठ न करौ अति कठिनु है मो तारबो गुपाल॥

—बिहारी

मोकों मुक्त बिचारत हौं प्रभु, पूछत पहर घरी।
सम ते तुम्हें पसीना ऐहै कति यह जतन करि॥

—सूर

दोनों ही भगवान के साथ होड़ लगाने को तैयार बैठे हैं। देखिये न :—

मोहि तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतौ जदुराज।
अपनै अपनै विरद की दुहूँ निबाहन लाज॥

—बिहारी

मोहि प्रभु तुमसे होड़ पड़ी।
... ...
'अपने विरद संभारहुगे तब या में सब निबरी।'
अब हौं उघरि नयन चाहत हौं तुम्है विरद बिनु करिहौं॥

—सूरदास

कबीर और बिहारी के क्षेत्र में आकाश पाताल का अन्तर होने पर भी दोनों के भाव कहीं कहीं बिलकुल मिल गये हैं। प्रियतम हृदय में बसने की कल्पना दोनों ने ही की है।

सखी सिखावति मानविधि सैननि बरजति बाल।
हरै कहै मो हीय में बसत बिहारी लाल॥

बिहारी

प्रीतम को पतियाँ लिखू जो कहुँ होय विदेस।
तन में मन में नैन में ताको कहत सन्देस॥

—कबीर

नेत्रों से प्रेम प्रकट हो जाता है इस बात को कबीर और बिहारी एक ही प्रकार से कहते हैं:—

कोरि जतन कीजै तऊ नागरि नेह दुरै न।
कहै देत चितु चीकनौ नई रुखाई नैन॥

—बिहारी

प्रेम छिपाया ना छिपै जा घर परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं नैन देत हैं रोय॥

—कबीर

साधुओं के ढोंग धतूरे के सम्बन्ध में भी दोनों के विचार मिल गये हैं।

जपमाला छापै तिलक सैर न एकौ कामु।
मन कांचै नाचै वृथा साँचै राँचै रामु॥

—बिहारी

माला फेरत युग गया पाय न मन का फेर।
कर का मन का छाड़ के मन मन का फेर॥

—कबीर

शृङ्गार रस के कवियों में देव मतिराम केशव, तोष आदि कवियों के साथ बिहारी की तुलना की जा सकती है। किन्तु बिहारी का सा समुधुर शब्द संगठन इनमें से किसी भी कवि को प्राप्त नहीं है।

नायिका के सुन्दर पैरों में महावर लगाने के भाव को लेकर देव और बिहारी ने बड़ी ही सुन्दर रचना की है। महावर लगाने वाली नाइन की परेशानी दोनों ने ही व्यक्त की है:—

कोहर सी रजिन की, लाली देखि सुभाय।
आई जावक देन को आपु भई बे पाय॥

पायन जावक देन को नायन बैठी आय ।
पुनि पुनि जानि महावरी एडिहि मोडत जाय ।।

—बिहारी

आइ हुतो अन्हवायन नायन, सौंवे किये पग सूवे सुभायनि ।
कंचुकि खोलि धरी उबटैबे को, ईंगुर के रंग सो सब ढायनि ।।
'देवजू' रूप की रासि निहारत पायँते सासजौं सासते पायनि ।
व्है रहो ठौरहि ठाढो ठगो सो, हँसै कर ठोढ़ी दिये ठकुरायनि ।।

—देव

केवल सारी पहनी हुई गोर वर्ण को नायिका का वर्णन देखिये:-

जरी कोर गोरे बदन बरो खरी छवि देख ।
लसति मनो बिजुरी किये सारद सदि परिवेष ।।

—बिहारी

गोरे मुख सेत सारो कंचन किनारी दार ।
देव मनि झुमका झुमकि झुमड़े परत ।
बड़े बड़े नैन कजरार बड़े मोती नथ ।
बड़ी बरुनीन होडा होडी घुमड़े परत ।

—देव

बिहारी और देव दोनों की नायिका को पति के बिना चन्दन चन्द्र तथा मलयानिल अत्यधिक पीड़ा देते हैं :—

औरै भाँति भये ऽबये चोसर चन्दन चन्द ।
पति बिन अति पारत विपति मारत माहत मंद ।।

—बिहारी

कन्त बिन वासर वसन्त लागे अन्तक से,
तीर ऐसे कि विध समीर लागे लहकन ।
सान करै सार से चन्दन छन सार लागे,

खेद लागे खेर मृगमेद लागे महकन ॥
फांसी से फुलेल लागे गांसी से गुलाब अरु,
गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन ।
अंग अंग आगि ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन अबीर लागे दहकन ॥

—देव

देव की विशेषता है वर्णन वैचित्र्य तथा भाषा का माधुर्य। बड़े छन्दों का उपयोग करने के कारण देव किसी भी बात क अधिक विस्तार के साथ कहते हैं। किन्तु बिहारी दोहे जैसे छोटे छन्द में एक संपूर्ण घटना का जीता जागता चित्र भर तेदे हैं।

भाषा की मधुरता में मतिराम का स्थान बहुत ऊँचा है। बिहारी की भाषा सधुर होने पर भी कहीं कहीं पर वह मतिराम से हार मान जाती है। इसका एक कारण यह है कि मतिराम की भाषा सरल है। किन्तु बिहारी के बराबर भाव उसमें नहीं है। विरह वर्णन और शरीर शोभा के वर्णन में मतिराम की कविता बहुत ही पीछे है। मतिराम ने बहुधा शब्दों के द्वारा साज शृङ्गार की सहायता से बहुत कुछ मिला जुला कर चित्रों को सुन्दर बनाया है। बिहारी के चित्र स्वयं संपूर्ण और सुहावने हैं। मतिराम की उपमाएं बड़ी सुन्दर होती हैं। बिहारी और मतिराम के कतिपय दोहों का अवलोकन कीजिये :—

सबै कहत बिन्दी दिये, अंक दस गुनो होत।
तिय तिवार बिन्दी दिये, अगनित बढ़त उदोत ॥

—बिहारी

होत दस गुनो अंक है, एक दियै ज्यों बिन्दु ।
दिये दिठौना त्यों बढ़ी, आनन आभा इन्दु ॥
—मतिराम

इन दुखिया अँखियानि को, सुख सिरजोई नाहि ।
देखे लहत न चैन अरु बिन देखे अकुलाहिं ॥
—बिहारी

कहा कहौ वाकी दशा, सुनौ सांवरै बात ।
देखे बिन कैसे जियै बिन देखे न अघात ॥
—मतिराम

आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की राति ।
करि करि साहस प्रेम बस सखी सबै ढिग जाति ॥
—बिहारी

लाल तिहारे विरह ते माह मास की रात ।
करि कपूर की कीच सो, सखी समीपहि जाति ॥
—मतिराम

रीतिकाल के आचार्य कवि केशवदास की कविता कल्पना तथा आलंकारिक दृष्टि से काफी अच्छी है। किन्तु उनमें बिहारी जैसी स्वाभाविकता नहीं है और न मर्म को स्पर्श करने वाले भाव ही। बहुत प्रयत्न करने पर भी केशव उतने ऊँचे नहीं पहुँच सके। हां! वर्षा का वर्णन उन्होंने अच्छा किया है। इन्होंने लिखा है—

'केसव पावस काल किधौं अविवेक महीपति की ठकुराई।'

केशव के कतिपय उत्कृष्ट पद देखिये :—

कोमल अमल चल चीकने चिकुर चारु
चितयेते चकचौंधि मत केसौ दास

सुनहु छबीली राधा छुटे ते छुवै छुवाति
कारे सटकारे हैं सुभाव ही सदा सुवास

और भी

मिलि मालती की माल लाल डोरी गुहै
बेणी पिक बेणी की त्रिवेणी सी बनाई है।

रसिक प्रिया में इन्होंने लिखा है :—

बिन गुन तेरी आनि भृकुटि कमान तानि
कुटिल कटाच्छ वान यहै अचरजु आहि—

अब इसी विषय पर बिहारी के कुछ दोहों को पढ़कर पाठक स्वयं निश्चय कर लें कि किसकी कविता सरस है।

सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार॥
छुटे छुटावैं जगत तें सटकारे सुकुमार।
मन बांधत बेनी बँधे नील छबीले बार॥
तिय कित कमनैती पढ़ी बिनु जिह भौंह कमान।
चल चित बेझो चुकति नहिं बंक विलोकनि बान॥

नायिका के शरीर की कोमलता का वर्णन बिहारी ने जैसा किया है, ठीक उसी का अनुकरण विक्रम कवि ने भी किया है। देखिये :—

भूषन भारु सँभारि है क्यौं इहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं सोभा ही के भार॥

—बिहारी

चलत लंक लचकत चलति सकति न अंग संगार।
भार डरनि सुकुमार वह धरत न उर पर हार॥

—विक्रम

इसी भाव को अकबर ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

'नाजुकी कहती है सुर्मा भी कहीं वार न हों'

प्रियतम का पत्र पाकर प्रोषित पतिका नायिका की होने वाली विकल अवस्था का वर्णन बिहारी ने सुन्दर किया है।

कर लै भूमि चढ़ाई सिर उर लगाई भुज भेरि।
लहि पाती पिय की लखति बांचति धरति समेटि॥
रंग राती राते हिये प्रीतम लिखी बनाय।
पाती काती विरह की छाती रही लगाय॥

इसी भाव पर तोष कवि ने लिखा है :—

कहै कवि तोष जिय जानि दुख काती ताते,
छाती की तबीज पिय पाती को किये रहै।
नेकु न पत्याती दिन राती इस भाँति प्यारी,
विरह अपाती ताको कातीसी लिये रहै॥

इसी भाव पर सेनापति की निम्नलिखित पंक्तियां भी लिखये :—

"माथे लै चढ़ाई दोऊ दृगनि लगाइ चूमि
छाती लपटाय राखी पाती प्रान पति की।"

अनेक अन्य कवियों के साथ भी बिहारी का भाव साम्य दिखाया जा सकता है। किन्तु ऐसा करने में पुस्तक का आकार बहुत ही बढ़ जायगा संपूर्ण विचार करने के बाद आलोचक रस स्थिति पर पहुँचता है कि बिहारी के सम्बन्ध में जितना ही अधिक विचार किया जाय, नई नई बातें प्रकट होती रहेंगी। इसीलिये किसी ने यह ठीक ही कहा है :—

सत सैया के दोहरे जिमि नाव थके तीर।
देखत के छोटे लगे घाव करे गंभीर॥

बिहारी के सम्बन्ध में अनेक प्रकांड विद्वानों और आलोचकों की पुस्तकें होते हुए भी मुझे एक ऐसे पुस्तक की कमी मालूम हुई जो बिहारी साहित्य का दर्शन करा सके। सांगोपांग दर्शन नहीं सामान्य और संक्षिप्त दर्शन। इस पुस्तक में इसी कमी को दूर करने का प्रयत्न किया है। इस संकलन में बिहारी के अधिकतर वे दोहे लिये गये हैं जो शृंगार रस के होते हुए भी सभ्य समाज में निःसंकोच रूप से पढ़े जा सकते हैं। बिहारी सतसई मुक्तक रचना होने के कारण इस पुस्तक में दोहों के संकलन में उपलब्ध किसी पुस्तक के क्रम का अनुकरण नहीं किया गया है।

इस पुस्तक की रचना में मुझे जिन पुस्तकों से सहायता मिली है उनके लेखकों के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। यदि इस पुस्तक से बिहारी का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को जरा भी मार्ग प्रदर्शन मिला तो मैं अपने प्रयत्नों को सफल समझूंगा।

प्रयाग — संकलन कर्ता

१२. ६. ४८.

———

आलोचना निबन्ध

जनता ईश्वर का
ही प्रतिरूप है।
इस लिए जनता
की सेवा ही ईश्वर
की सर्वोत्तम पूजा
है।
जनता जिस पर
प्रसन्न हो जाय,
ईश्वर उस पर
प्रसन्न है।

लक्ष्मीधर वाजपेयी